अध्याय–1

भूमिका

''षिक्षित सेवानिवृत्तों के लिए सेवानिवृत्ति, एक अनिवार्य दषा है जिसका सम्बन्ध आयु विषेश के व्यक्तियों से है, परोक्ष रूप से वृद्धावस्था का द्योतक है। वृद्धावस्था मानव जीवन की एक गम्भीर, जटिल एवं सार्वभौमिक समस्या है। तीव्र परिवर्तनों के दौर में परिवार की संरचना तथा प्रकार्यों में हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरूप परिवार सेवानिवृत्तों, अनाथों, विधवाओं, विधुरों व वृद्धों की सहायता एवं सुरक्षा देने का कार्य पूर्व की भाँति नहीं कर पा रहे हैं। यही कारण है कि वृद्धों और परिवार के बीच सफल समायोजन नहीं हो पा रहे हैं और वृद्धों का पारिवारिक जीवन समस्याग्रस्त हो रहा है।''

– सिंह बी0एस0 ; सेवानिवृत्तिः एक समस्या, रिसर्च पब्लिकेसन्स (राज0) जयपुर, 2015, पृश्ठ 183

मानव जीवन; आयु के विभिन्न स्तरों से गुजरता हुआ वृद्धावस्था में पहुँचता है। यही वह अवस्था होती है जब व्यक्ति को अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों तथा विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ व्यक्ति तो इन परिवर्तनों तथा समस्याओं का सामना करने के लिए स्वयं को पहले से तैयार कर लेते हैं; किन्तु जो व्यक्ति स्वयं को इसके लिए सेवानिवृत्ति के पहले से तैयार नहीं कर पाते हैं; उन्हें अत्यधिक कठिनाईयों तथा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में सबसे परिवर्तनषील परिस्थिति तब आती है; जब उसे सेवानिवृत्ति या उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य को, जिससे उसे एक निष्चित आय भी प्राप्त होती है, अनिवार्य रूप से समाप्त करने का आदेष दिया जाता है। वर्तमान समय में सेवानिवृत्तों के समक्ष विभिन्न प्रकार की समस्याएं देखी जा सकती हैं। व्यक्ति; समाज का सदस्य होने के साथ–साथ एक समुदाय व परिवार का सदस्य भी निष्चित रूप से होता है। जहॉ उससे जुड़े अन्य सदस्य उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपने कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों का सही ढंग से निर्वाह करें। ऐसे व्यक्ति जो स्वयं को परिवर्ती परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित करने (ढाल लेने) की क्षमता रखते हैं तथा अन्य सम्बन्धित सदस्यों की आषाओं व अपेक्षाओं को उनके अनुरूप पूरा करते हैं, उन्हीं व्यक्तियों में भूमिका–समायोजन की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन; **''सेवानिवृत्त महिलाओं की स्थितिः मथुरा जनपद के विषेश सन्दर्भ में एक समाजषास्त्रीय अध्ययन''** पर आधारित है। सेवानिवृत्ति से उनके साथ, परिवार एवं समुदाय के साथ भूमिका–समायोजन **;त्वसम ।करनेजउमदजद्ध** जैसी जटिल समस्याएं आती हैं; इन समस्याओं का समाजषास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने के लिए प्रस्तुत शोध समस्या को अनुसंधान का विषय चुना गया है। क्योंकि वृद्धावस्था; स्वाभाविक जीवन चक्र की

एक अनिवार्य षास्वत दषा है जो एक विषिश्ट बीमारी के समान है। यह प्रत्येक व्यक्ति को आनी है वह व्यक्ति जो जीवित रहता है, अन्य सब बीमारियॉ उसे निरपवाद रूप से जकड़ लेती हैं; षारीरिक व मानसिक दुर्बलता के साथ–साथ व्यक्ति को परिवार एवं सामुदायिक समायोजन, एकाकीपन एवं अलगाव, खाली समय का सृजनात्मक उपयोग न होना तथा स्वयं एवं आश्रितों के पोशण हेतु अपर्याप्त आय आदि अनेकानेक मनोवैज्ञानिक समस्याएं उसे घेरे रहती हैं।

सामान्यतौर पर सेवानिवृत्त/वृद्धावस्था, मानव–जीवन की अन्तिम अवस्थाएं हैं। वैसे तो मनुष्य को अपने जीवन में अनेक कठिनाईयों व समस्याओं का सामना करना पड़ता है; उनमें से कुछ समस्याएं सामान्य प्रकृति की होती हैं; तो कुछ समस्याएं अत्यन्त जटिल; और कुछ समस्याएं तो इतनी जटिल कि उनका निदान सम्भव नहीं हो पाता; इसलिए यह कल्पना करना ही कठिन है कि मानव जीवन समस्या रहित भी हो सकता है। मनुष्य को जीवन के प्रत्येक चरण में अनगिनत परिवर्तनों तथा समस्याओं के साथ सामंजस्य करना पड़ता है किन्तु जीवन के अन्तिम चरण; वृद्धावस्था में इतनी अधिक परिवर्तनषील परिस्थितियों से जूझना पड़ता है जिससे उसका सामंजस्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है। वृद्धावस्था में होने वाले अनेक परिवर्तनों जैसे बाह्य शारीरिक परिवर्तन जिसमें शरीर का पहले की अपेक्षा कमजोर हो जाना तथा अनेक रोगों का षिकार हो जाना; षिथिलता और विभिन्न आन्तरिक (मनोवैज्ञानिक) परिवर्तनों जैसे– व्यक्ति का स्वयं को बेकार समझने लगना व परिवार एवं समाज द्वारा उपेक्षित समझना इत्यादि। ये परिवर्तन उम्र बढ़ने के साथ–साथ स्वतः होने लगते हैं। कुछ परिवर्तनों का जिम्मेदार स्वयं समाज तथा सेवा होता है जिसे अवकाष–प्राप्ति या सेवानिवृत्ति के नाम से जाना जाता है, यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति के समक्ष विभिन्न वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेकों समस्याएं तथा कार्य–भूमिका की हानि की स्थितियॉ उत्पन्न हो जाती हैं।

जीवन के अन्तिम छोर में सेवानिवृत्तों/वृद्धों को जहॉ पारिवारिक स्नेह और सेवाटहल की सर्वाधिक आवष्यकता होती है; वहीं इनकी पीड़ा में रोज–रोज इजाफा ही हो रहा है/होता जा रहा है। एकल परिवारों के अस्तित्व में आने तथा परिवार का दायरा पति–पत्नी व बच्चों तक ही सिमटता जा रहा है, इस कारण 'वृद्ध समाज' पारिवारिक परिदृष्य से अलग थलग पड़ता जा रहा है। इनकी स्थिति ऍगुली के पके नाखून की तरह है, जिन्हें बेरहम काटकर फेंक दिया जाता है। पहले घर परिवार में रौब दौब चलता था; उनकी डॉट व प्रेम

का भी अर्थ होता था। उन्हें कभी बुर्जुगियत का दायित्व निभाना होता था, तो कभी अति सम्मान प्रदान किया जाता था। कहा जाता था कि बुजुर्गों की छत्रछाया सौभाग्यषाली व किस्मत वालों को ही मिलती है। किन्तु आज स्थिति बिल्कुल विपरीत, भिन्न तथा सोचनीय है।

षोध अध्ययन में प्रयुक्त अवधारणाएं तथा उनका स्पश्टीकरण :

चूँकि षोध में प्रत्युक्त अवधारणाएं (सम्प्रत्यय) षोध में मील का पत्थर होती हैं अतः षोधार्थिनी ने भी अवधारणाओं के स्पश्टीकरण किए हैं। सामान्यतः ''सेवानिवृत्ति'' से तात्पर्य ऐसी परिस्थिति से होता है जिसमें व्यक्ति की एक निष्चित आयु के बाद, अपने उस कामकाजी जीवन या नौकरी को छोड़ना पड़ता है जिससे उसे जीविकोपार्जन हेतु धन की प्राप्ति होती थी।

जब कोई व्यक्ति अपने जीवन के अधिकांष समय में पहले परिवार, स्कूल आदि में; और फिर नौकरी ;मतअपबमद्ध व्यवसाय में काम करने का अभ्यस्त हो चुका होता है; तब अचानक काम और जिम्मेदारी के छिन जाने से ''कार्यविहीनता'' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में व्यक्ति प्रायः ऊब जाता है; और निष्क्रिय होने लगता है क्योंकि व्यक्ति पूर्ण अवकाष का अभ्यस्त नहीं होता। सेवानिवृत्ति के बाद व्यक्ति को यह लगने लगता है कि वह उपेक्षा और अकेलेपन का षिकार हो गया है; और समाज तथा परिवार के लिए अब उसका कोई महत्व या योगदान नहीं है। वह स्वयं को सबसे ज्यादा हतोत्साहित, कुण्ठित, निराष, अकेला तथा बेकार महसूस करने लगता है। सेवा/कार्य निवृत्ति के प्रसंग में **सर्वश्री मेयर[1] (1957:58) ने लिखा है कि– ''कार्यनिवृत्ति या जिम्मेदारियों के घटने से जो अधिक अवकाष मिलता है, वह प्रायः उबाऊ या उबाने वाला होता है; और फलतः व्यक्ति का अभिप्रेरण घट जाता है।''** व्यक्ति के जीवन में यह कठिन मोड़ 58–60 वर्ष की उम्र के आस–पास होता है। इस उम्र में आकर उन कठिन समस्याओं का सामना भी उसे करना पड़ जाता है, जिन के बारे में व्यक्ति कभी सोचता भी नहीं है अथवा सोचता भी नहीं था।

मीरलू जे.ए.एम.[2] (1955:72–82) के अनुसार– ''सेवानिवृत्ति को जीवन के सुख का काल होना चाहिए। इस काल में व्यक्ति को अपने परिश्रम के फलों के उपभोग के लिए अवकाष और आराम मिलना चाहिए। व्यक्ति को आजाद रहना चाहिए। यह वह समय होता है जिसमें उसे अपनी आकुलताओं से मुक्त हो जाना चाहिए और उसके ऊपर काम का बन्धन नहीं रहना चाहिए। यह वह समय होता है जब व्यक्ति अपनी उपलब्धियों के कारण प्राप्त

प्रतिष्ठता और अपने परिवार की निष्ठा और भक्ति से शान्ति और सन्तोष का अनुभव करता है। हमारे समाज में थोड़े ही वृद्ध ऐसे होते हैं, जो अपने जीवन के अन्तिम दिनों में सुख व सन्तोष का अनुभव करते हैं। वस्तुतः अधिकतर लोगों के लिए वृद्धता एक दुःखद अनुभव होता है।''

''सेवानिवृत्ति'' शब्द अत्यन्त नवीन संप्रत्यय है जो कि विवाद का प्रष्न रहा है और आज भी है। कुछ विद्वान सेवानिवृत्ति का अभिप्राय उम्र वृद्धि, सेवा की समाप्ति तथा अवकाष प्राप्ति से लगाते हैं; तो कुछ कार्यमुक्ति या कार्यविहीनता से। 'अवकाष प्राप्ति' को परिभाषित करते हुए **इपस्टीन एण्ड मूरे (1968:354) ने लिखा है कि** सर्वाधिक विस्तृत मानदण्ड वह होगा कि उन सबों को मिला लें जो वर्ष भर कार्य नहीं करते हैं, दूसरे वे सभी व्यक्ति 'जो कुछ काम करते हुए भी सेवानिवृत्ति का लाभ प्राप्त करते हों। इस प्रकार यह सुस्पष्ट है कि ''सेवानिवृत्ति एक ऐसी अवधारणा है जिसमें एक निष्चित आयु के बाद व्यक्ति की वैयक्तिक व सामाजिक दोनों स्थितियों में अत्यधिक परिवर्तन हो जाते हैं।''

जैक एण्ड सूसन[3] (1980) ने लिखा है कि– ''कार्मिकों को अनिवार्य रूप से अपने दायित्व से अवकाष प्राप्त करना पड़ता है। इसके बदले में उन्हें 'सेवानिवृत्ति' मिलती है।

हैविंग हर्स्ट एण्ड षैनस[4] (1453:81–85) का कहना है कि– ''सेवानिवृत्ति के सामान्यतः पांच प्रकार होते हैं– *पहला:* निष्चित आयु में पूरी कार्यनिवृत्ति, *दूसरा:* उसी धन्धे में सक्रियता धीरे–धीरे कम कर देना या कम पड़ जाना, *तीसरा:* जिम्मेदारी धीरे–धीरे उसे सौंप देना, जिसे बाद में पद संभालने के लिए तैयार किया जा रहा होता है, *चौथा:* उसी धन्धे में कुछ कम स्तर का कार्य सौंप दिया जाना, *पांचवॉ:* किसी दूसरे धन्धे में भिन्न और कम जिम्मेदारी का पद सम्भाल लेना। यदि व्यक्ति को स्वयं ही 'सेवानिवृत्ति' का चुनाव करने दिया जाय तो अधिकतर लोग सेवानिवृत्ति के उस प्रकार को चुनेंगे जिसमें सक्रियता धीरे–धीरे कम कर दी जाती है क्योंकि इससे पद और प्रतिष्ठा में कमी नहीं होती; साथ ही इसमें नए काम से समायोजन करने की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।''

डोनाऊ ओरबैक एण्ड पोलॉक[5] (1995:330) लिखते हैं कि– ''प्रतिदिन के व्यवहार में सेवानिवृत्ति से समझा जाता है कि वह व्यक्ति पिछले कुछ वर्षों से निष्चित वेतन पाए जाने वाले कार्य व सेवा से अलग हो गया है। उनके विचार में सेवानिवृत्ति; व्यक्ति की सामाजिक भूमिका में ऐसे परिवर्तनों की शुरूआत करती है जिसके परिणाम स्वरूप उसकी सामाजिक प्रस्थिति में परिवर्तन होता है। सामाजिक जीवन में इस उभरती हुई प्रस्थिति को; जिसे हम

सेवानिवृत्ति कहते हैं; एक नाटकीय ढंग से रेखांकित किया जाता है और जो आधुनिक समाज में एक बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए एक नयी और विषिष्ट भूमिका का परिचायक है।''

इस प्रकार सेवानिवृत्ति से तात्पर्य व्यक्ति का कामकाजी जीवन से गैर कामकाजी जीवन की ओर अग्रसर होना है। यदि इसे एक घटना के रूप में देखें तो सभी की नजरों में ''सेवानिवृत्ति'' व्यक्ति का कार्यकारी जीवन से विरत होना है; किन्तु कभी–कभी व्यक्ति एक कार्य से अवकाष लेकर दूसरा कार्य आरम्भ कर देते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 'सेवानिवृत्ति' का अर्थ व्यक्ति के जीवन की ऐसी परिस्थिति से लिया गया है जिसमें व्यक्ति को कुछ निष्चित वर्षों के पष्चात् अपने उस कामकाजी जीवन को छोड़ना पड़ता है, जिससे उसे एक निष्चित आय भी प्राप्त होती थी। बाद में उसकी आय का स्त्रोत पूर्व की सेवा षर्तों के आधार पर प्राप्त पेंषन हो सकता है; या अन्य स्त्रोत हो जाते हैं।

भूमिका ;त्वसमद्ध :

भूमिका; एक विषेष स्तर के साथ सम्बन्धित सांस्कृतिक ढांचे का योग है और भूमिका–व्यवहार, भूमिका अधिकार, वास्तविक आचरण आदि के साथ मिलता जुलता शब्द है जिसका कोई सर्वसम्मत अर्थ नहीं है; किन्तु **थॉमस एण्ड ब्रिडले[6] (1960:29)** के अनुसार इसका प्रयोग (विधिवत् वर्णन), विकास एवं कार्य के रूप में किया जाता है। इसे अपने प्रति या अन्यों के प्रति आचरण कहा जाता है। ऐसा आचरण या व्यवहार जो व्यक्ति स्वयं करता है; या इसके विपरीत जैसा आचरण करने के लिए उसे निर्देष दिया जाता है। **लिण्टन[7] (1960:103) के अनुसार** 'भूमिका' शब्द एक विषेष स्तर के आयु वाले सांस्कृतिक ढांचे के समेकित रूप का द्योतक होता है एवं समाज द्वारा वैसे स्तर के एक या सभी व्यक्तियों की प्रवृत्तियों, मूल्यों और आचरणों का परिचायक है।

आमतौर पर 'भूमिका' शब्द का आषय किसी पद पर आसीन व्यक्ति के आचरण एवं लक्षणों से लिया जाता है। जैसा कि **न्यूकॉम्ब[8] (1960) ने लिखा है कि** ''यह उन सभी आचरणों का योग है जो किसी भी पद पर आसीन सभी व्यक्तियों के लक्षणों का है एवं ''नियमबद्ध भूमिका'' वह है जो किसी पद पर आसीन व्यक्ति, किसी भी कार्य को करने के लिए समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों का प्रयोग करता है और 'भूमिका व्यवहार' वह है जो पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा भूमिकाएं निर्वाह करते हुए किया जाता है।

समाज में या परिवार में व्यक्ति की भूमिका; परिस्थितियों के अनुसार सदैव बदलती रहती है। यह स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपनी भूमिका के साथ स्वयं को समायोजित कर पाता है या नहीं। सेवानिवृत्ति के पष्चात् जिन भूमिकाओं को निभाना पड़ता है, उनसे जो व्यक्ति अच्छी तरह समायोजित नहीं होते वे जल्दी उपेक्षित होते देखे जा सकते हैं।

समायोजन तथा भूमिका समायोजन ;।करनेजउमदज – त्वसम ।करनेजउमदजद्ध :

'समायोजन' वह स्थिति है जिससे विभिन्न व्यक्ति या समूह निरन्तर एक विषेष पर्यावरण में रहने के कारण या एक दूसरे के सम्पर्क में रहने के कारण अभिरूचियों, हितों और लक्ष्यों के मार्ग में आने वाली विभिन्न बाधाओं तथा विशम परिस्थितियों को सहन करने में अभ्यस्त हो जाते हैं ताकि वे सामाजिक प्रणाली की आषाओं के अनुरूप व्यवहार करते हुए उसमें अपना समुचित स्थान बना सकें।

प्रो0 गेट्स[9] (1948:614) के अनुसार– 'भूमिका समायोजन' जीवन में निरन्तर चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने तथा वातावरण के मध्य सन्तुलित सम्बन्ध कायम रखने के लिए अपने व्यवहारों में परिवर्तन करता है।'' समायोजन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति, वातावरण के साथ स्वयं सम्बन्ध स्थापित करता है; और सम्बन्धों को बनाए रखता है।

इंग्लिष एच.बी.[10] (1958:13) के अनुसार– ''समायोजन से तात्पर्य पर्यावरण से सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध एवं उस दषा से है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति प्रायः अपनी सभी आवष्यकताओं, शारीरिक तथा सामाजिक मॉगों आदि की पूर्ति सामान्य रूप से कर लेता है।'' इस प्रकार समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीवित प्राणी अपनी आवष्यकताओं तथा परिस्थितियों के साथ सन्तुलन स्थापित करता है। यदि व्यक्ति बाधाओं व परिस्थितियों के साथ समायोजन कर लेता है तो वह सुसमायोजित व्यक्ति होता है। समायोजन के द्वारा व्यक्ति अपनी मनोवैज्ञानिक आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नषील रहता है। किन्तु सुसमायोजन तभी संभव है जब व्यक्ति को अपनी आवष्यकताओं के बारे में पूरी जानकारी हो एवं उसकी प्रकृति में लचीलापन हो। समायोजन के अभाव के कारण व्यक्ति में परिपक्वता में कमी होती है। कभी– कभी कोई व्यक्ति समायोजन के अभाव में ऐसा कार्य करता है, जिसे हम 'क्षतिपूर्ण व्यवहार' या कुसमायोजन **;डंसं.करनेजउमदजद्ध** की संज्ञा दे सकते हैं। सुसमायोजन से व्यक्ति, परिवार एवं समाज का एक योग्य व्यक्ति व नागरिक बन जाता है तथा उसकी अन्तर्निहित शक्तियों व योग्यताओं का उपयोग परिवार, समुदाय अथवा राष्ट्र–निर्माण के लिए हो सकता

है। व्यक्ति के जीवन के अनुभवों एवं परिस्थितियों द्वारा ही यह निष्चित होता है कि वह अपने जीवन में होने वाले परिवर्तनों में स्वयं को किस प्रकार समायोजित कर पाता है। आवष्यकताओं की पूर्ति एक प्रकार का लक्ष्य है; लेकिन यह पूर्ति सामाजिक, आर्थिक एवं सॉस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप होनी चाहिए। यदि वह व्यक्ति इस बात को ध्यान में नहीं रखता; तो उसका समायोजन बिगड़ सकता है एवं सामंजस्य करने में असफल हो जाता है। सम्प्रति ऐसे व्यक्ति में नैराष्य व हीनता की भावना आ जाती है।

समायोजन–प्रक्रिया एवं व्यक्तिगत समायोजन ' ;**।करनेजउमदज च्तवबमे – च्मतेवदंस ।करनेजउमदजद्ध** :

इस प्रक्रिया में मुख्य बात यह है कि समाज की परिवर्ती परिस्थितियों में व्यक्ति को नित्य नई–नई आवष्यकताओं को यथाषक्ति पूरा करना होता है यदि वह आवष्यकताओं को पूरा करने में सफल होता है; तो उसका समायोजन भी सफल होता है। **शेफर एण्ड शोबेन[11] (1956:3) ने समायोजन को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। ''जीवन उन परिस्थितियों का एक ऐसा क्रम है जिसमें कि आवष्यकतायें उत्पन्न होती हैं और फिर उन्हें पूरा किया जाता है। इसी परिचित प्रारूप को समायोजन की प्रक्रिया कहते हैं।**

प्रायः अधिकांष व्यक्ति यह सोचते हैं कि सेवानिवृत्ति के पष्चात् उन्हें जीवन को मनचाहे ढंग से जीने का अवसर प्राप्त होगा, परन्तु अक्सर ऐसा सम्भव नहीं होता। इस समय व्यक्ति में वरिश्ठ आत्म सम्मान व अहंकार आदि की भावना भी आ जाती है। जिससे व्यक्ति को समायोजन करने में कठिनाईयों का अनुभव होता है। कुछ व्यक्ति अपनी मानसिकता व रूचि के अनुसार धार्मिक व आध्यात्मिक कार्यों में स्वयं को व्यस्त कर लेते हैं तथा कुछ रचनात्मक कार्यों में, इसलिए उनको समय व्यतीत न होने की समस्या नहीं होती है। परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनकी रूचि इनसे भिन्न परिवार में स्वयं को व्यस्त करने की नहीं होती है या कुछ अन्य रूचियॉ नहीं होती हैं। विषेश रूप से ऐसे व्यक्तियों को अनेक व्यावहारिक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। ऐसे व्यक्ति जो सेवानिवृत्ति के पष्चात् कश्ट का अनुभव करते हैं; ऐसे व्यक्तित्व पॉच प्रकार के होते हैं– (1) परिपक्व व्यक्तित्व (2) धैर्यवान व्यक्तित्व (3) आक्रामक व्यक्तित्व (4) क्रोधपूर्ण व्यक्तित्व (5) स्वयं से घृणा करने वाला व्यक्तित्व। पहले व्यक्तित्व के व्यक्ति नई परिस्थितियों का आनन्द उठाते हैं और नयी परिस्थितियों में सुगमता से ढल जाते हैं,

---

' ''समायोजन व्यक्ति द्वारा अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति एवं कठिनाईयों का सामना करने के प्रयास का परिणाम है''

–कोलमैन जे.सी. ; ऐबनॉर्मल साइक्लोजी एण्ड मॉडर्न लाइफ, तारा पोरवाल एण्ड सन्स, बम्बई, 1969, पृश्ठ 656

दूसरे प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति धैर्य के साथ नई परिस्थितियों को समझते हैं और धीरे–धीरे स्वयं को उनके अनुकूल ढाल लेते हैं, तीसरे प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति जो बहुत चपल व सक्रिय होते हैं और सेवानिवृत्ति से हुई हानियों तथा नकारात्मक प्रभावों को दबा देते हैं; चौथे प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति क्रोधी व्यक्तित्व के होने की बजह से अपनी असफलताओं के कारण कुंठित हो जाते हैं; और वर्तमान हालातों के लिए दूसरों को दोश देते हैं तथा पॉचवें प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपनी असफलताओं के कारण कुण्ठित होते हैं, मगर दूसरों को दोश देने के बजाय स्वयं को दोशी मानते हैं। निश्कर्शतः यह व्यक्ति की मानसिकता पर निर्भर करता है कि वे सेवानिवृत्ति के प्रति कैसा दृश्टिकोण रखते हैं? कुछ व्यक्ति सेवानिवृत्ति को लेकर दबाव व तनाव में रहते हैं तो कुछ उच्च पद पर रहकर आनन्द की अनुभूति करते हैं क्योंकि उनके लिए उनका पद ही उनके व्यक्तित्व की पहचान बन चुका होता है। जो व्यक्ति निम्न पदों से सेवानिवृत्त होते हैं उनके लिए नियमित आय का कम होना या समाप्त होना, कई समस्याओं को जन्म देता है। सन्तुश्ट सेवानिवृत्ति का सम्बन्ध इस बात से है कि व्यक्ति सेवाकाल के दौरान खाली समय व अवकाष का समय किस प्रकार व्यतीत करता है। सेवानिवृत्त व्यक्ति यह चाहते हैं कि वे फिर सक्रिय बन जांय ताकि वे अवसाद, आत्मलीनता, आत्मिक बेचैनी और अकेलेपन से बचे रहें; और समाज में उनकी उपयोगिता व उनकी प्रतिश्ठा बनी रहे।

सेवानिवृत्ति के पष्चात् व्यक्ति के जीवन में बहुत से परिवर्तन आते हैं, ये परिवर्तन उसके जीवन निर्वाह के तरीकों पर निर्भर होते हैं जैसा कि **कार्लसन और स्टीगलित्स[12] (1952:18–31) ने लिखा है–** ''आयु वृद्धि का अलग–अलग लोगों पर अलग–अलग प्रभाव होता है और स्त्री पुरूशों में उसकी रफ्तार अलग–अलग होती है। साथ ही आनुवांषिक, सामाजिक, आर्थिक और षैक्षिक पृश्ठभूमियों में भिन्नता होने से भी वयोवृद्धि के प्रभाव में भिन्नता आ जाती है।''

यह स्वयं व्यक्ति पर ही निर्भर होता है कि वह इन परिवर्तनों के साथ सामंजस्य करता है या नहीं करता है। यदि व्यक्ति के अन्दर समायोजन की क्षमता होती है तो इन परिस्थितियों का विषेश प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु यदि व्यक्ति में समयोजन क्षमता का अभाव या कमी होती है तो विषेशतया वह नई परिस्थितियों में अनेक समस्याओं से ग्रसित हो जाता है।

रीनमैन[13] (1954:379) ने कहा है– ''अधिक आयु के लोग तीन वर्गों में आते हैं जिनमें से हर एक के विषिश्ट लक्षण होते हैं लेकिन इन सामान्य वर्गों के अन्दर भी कुछ ऐसे होते हैं जिनमें वर्ग के विषिश्ट लक्षण अन्यों की अपेक्षा अधिक विकसित रूप से पाये जाते हैं। ये तीन वर्ग हैं– स्वायत्त, समायोजित और परायत। स्वायत्तों का लक्षण यह है कि उनमें सृजनात्मक सक्रियता और आत्मस्फूर्ति होती है, जो षरीर को सजीव बनाये रखती है। वे सांस्कृतिक परिवर्तनों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित रहते हैं और आयु वृद्धि से उनकी समझदारी बढ़ती है, लेकिन स्वस्फूर्ति नश्ट नहीं होती, वे अनिवार्यतः संतुलित या समायोजित नहीं होते और ऐसों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। समायोजित वर्ग में वे लोग आते हैं जो पर्यावरण के अनुसार स्वयं को ढाल लेते हैं और कार्य करते रहते हैं। इन्हीं कार्यों के कारण वे स्फूर्तिमय बने रहते हैं। पर्यावरण उन्हें रक्षा का वातावरण प्रदान करता है और जब तक सांस्कृतिक परिस्थिति अनुकूल होती है तभी तक वे अपने को बनाये रख सकते हैं। तीसरा वर्ग परायतों का है जो षारीरिक स्फूर्ति नश्ट होने पर तुरन्त नश्ट हो जाते हैं क्योंकि संस्कृति तब उन्हें सहारा नहीं देती है।''

व्यक्ति वृद्धावस्था में किस प्रकार समायोजन करता है यह उसके पूर्व के जीवन अनुभवों पर निर्भर करता है। साथ ही यदि परिवार और समाज का व्यक्ति के प्रति सहयोगी रूख है तो वह सफलतापूर्वक समयोजन कर पायेगा। वर्तमान समय के बदलते सामाजिक मूल्यों, आधुनिकता तथा अत्यधिक व्यस्त जीवन के कारण तमाम वृद्ध अपनों के होते हुए भी स्वयं को निराष, असहाय व बेसहारा महसूस करते हैं। वास्तव में जिस गति से आज वृद्ध नागरिकों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भविश्य में इनकी समस्यायें और भी जटिल होती जायेंगी।

क्लाऊ[14] एच0ई0 (1960:592–599) के अनुसार जिन व्यक्तियों की सेवानिवृत्ति के बाद उत्साह बनाये रखने वाली रूचियॉ नहीं होतीं, उनके अस्त–व्यस्त होने की संभावना अधिक होती है। फलतः वे षारीरिक और मानसिक दोनों तरह से क्षीण हो जाते हैं और उनके जल्दी ही मर जाने की संभावना रहती है। देखा गया है कि मानसिक रोगों के ग्रस्त वृद्धों में से अधिकांष में क्रिया विकृतियॉ होती हैं जो मस्तिश्क विकारों के नहीं बल्कि मानसिक कारकों का प्रतिफल होती हैं।'' व्यक्ति अपने अतिरिक्त समय का प्रयोग जितनी बुद्धिमानी, क्रियाषीलता व सजगता से करता है उसी पर उसका सफल व संतुश्ट जीवन निर्भर होता है।

वृद्ध व्यक्ति का सेवानिवृत्ति के प्रति रवैया इस बात से प्रभावित होता है कि काम का उसके लिए क्या मतलब रहा है। **लावटन[15] (1964:37) के अनुसार** ''जीवन भर के तौर तरीकों को छोड़ देने और जीवन भर की आदतों को एकाएक बदल देने से बुजुर्ग आदमी को जो अनुभव होता है वह मानसिक बिचलनकारी व प्राणघातक भी सिद्ध हो सकता है।'' अधिकांष व्यक्ति प्रतिदिन किए जाने वाले अपने कार्यों में इस प्रकार व्यस्त हो जाते हैं कि उसके बिना उन्हें अधूरापन लगता है यह अपरिपक्व व्यक्तित्व का लक्षण होता है। जब उन्हें सेवा से अनिवार्य अवकाष दिया जाता है तब वे स्वयं को असहज महसूस करते हैं क्योंकि उन्होंने अपने मन में अपनी भूमिका उसी काम को करते रहने वाले की बनाई होती है सम्प्रति उसी स्वचित्र में उन्हें आनन्द और संतुश्टि का अनुभव होता है। अधिकतर वृद्ध पर्यावरणगत परिवर्तनों से तो सफलतापूर्वक समायोजन कर लेते हैं लेकिन आन्तरिक परिवर्तनों के साथ सफलातपूर्वक समायोजन कुछ व्यक्ति ही कर पाते हैं। **पी.एल. एस्सर्ट[16] (1961:70) ने कहा है कि ''यदि समायोजन को सफल बनाना है तो व्यक्ति को आयु वृद्धि के साथ–साथ जीवन में आने वाले परिवर्तनों से आवष्यक समायोजन कर लेना चाहिए।''**

बहुत से समुदाय वृद्धों के प्रति अपने दायित्वों का ज्ञान रखते हैं और वृद्धों को सुखी होने के लिए जिन सामाजिक सम्पर्कों और उचित कार्य कलापों की आवष्यकता होती है उनके लिए अवसर देने की कोषिष करते हैं। फिर भी आज इस दिषा में जो कुछ किया गया है वह इतने छोटे पैमाने पर किया गया है कि थोड़े लोग ही उससे लाभान्वित होते हैं। फलतः वृद्धावस्था में व्यक्तियों में सामान्यतः असंतोश और अप्रसन्नता बनी रहती है और ये मानसिक स्थितियॉ ऐसी हैं कि वृद्धों के अन्दर मानसिक विकृतियॉ आने की संभावनाएं पैदा कर देती हैं, जिससे वृद्ध आबादी के इस उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भाग की देखभाल का समाज के ऊपर भार बढ़ जाता है। यह बात भी कम गम्भीर नहीं है कि वृद्धों के सम्पर्क से कम आयु वालों का वृद्धावस्था के प्रति रवैया नकारात्मक हो जाता है, जिसके फलस्वरूप समय आने पर वृद्धावस्था से उनका समायोजन नहीं हो पाता है।

विख्यात मनोवैज्ञानिक डब्ल्यू.ई. वेस्ट[17] (1954:80–82) ने अपने अध्ययन के आधार पर कहा है कि ''वृद्धों के प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियॉ व्यक्ति बाल्यावस्था से ही पकड़ लेता है बच्चे न केवल माता–पिता से बल्कि लोक कथाओं और परियों की कहानियों से भी वृद्धावस्था की रूढ़ धारणाओं को ग्रहण कर लेते हैं। इनमें से कुछ वृद्धों को दयालु बताती हैं

लेकिन अनेक ऐसी होती हैं जो वृद्धों को विषेशतया वृद्धा स्त्रियों को दुश्ट और निर्दयी दिखाती हैं फलतः ये वृद्धों के प्रति एक प्रतिकूल धारणा बना देती है।''

गोल्ड फर्ब[18] (1959:608) ने कहा है कि प्रतिकूल सामाजिक और व्यक्तिगत अनुभवों से पैदा होने वाले अहं, संप्रत्यय, कुंठा, आकुलता तथा रोश, असहायता की भावना को जन्म देते हैं। फिर इनसे दूसरों के साथ कलह और व्यक्तिगत जीवन में अप्रसन्नता की उत्पत्ति होती है और ये दोनों ही वृद्ध व्यक्ति को उसके जीवन के ढांचे में होने वाले परिवर्तनों से समायोजन करने में इतना अधिक असमर्थ बना देते हैं, जितना वह इनके न होने पर न हुआ होता है।

पाष्चात्य विद्वानों ने अपने आनुभविक अध्ययनों के आधार पर अपने निश्कर्श निकाले हैं। जैसे कि **कूटनर[19] (1956)** ने कहा है कि 65 से 69 वर्श के बीच की आयु में सामाजिक सम्बन्धों में स्वतः काफी कमी आ जाती है।

माईक्लोन[20] (1959:371) ने फ्लोरिडा के निवासियों के एक छोटे समूह का अध्ययन किया और निश्कर्श निकाला कि जब व्यक्ति के कार्य का अर्थ धनात्मक था तब अवकाष प्राप्ति की ओर जाना कठिन था, लेकिन जब उसके कार्य का अर्थ ऋणात्मक होता है तब वह आसानी से सेवानिवृत्ति को स्वीकार कर लेता है। लेकिन **फायर्ड[21] (1970:141–151)** ने अमेरिका में किए अपने आनुभविक अध्ययन के आधार पर लिखा है कि जो असफल व्यक्ति अपनी जिद के कारण कार्यषील जीवन से जुड़े रहते हैं, प्रथमतः तो यह दिखाना चाहते हैं कि वे अभी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे वे होते हैं जो यह गलत साबित करने का प्रयास करते हैं कि वृद्धों की ऊर्जा में कमी आ जाती है जो आत्मसम्मान को चोट पहुॅचाती है।

क्रोटेड[22] (1969:107) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि सेवानिवृत्ति का किसी व्यक्ति की क्षमता, नैतिक जीवन, आत्मानुषासन, संतोश और आषावादिता आदि पर बहुत कम असर पड़ता है। उनका कहना है कि सेवानिवृत्त व्यक्ति की संतुश्टि इस बात पर निर्भर करती है कि कार्य कैसा है? और व्यक्ति के व्यक्तिगत कारण कैसे हैं। **फ्रैंक आइंटजिन[23] (1970:146)** के अनुसार अवकाष प्राप्ति के विभिन्न वर्शों में नैतिक और सामाजिक कार्यों एवं सम्बन्धों की कमी में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है। पाष्चात्य विद्वानों के अध्ययनों में विरोधाभास पाया जाता है। यह विरोधाभास स्वाभाविक भी है क्योंकि वहां का परिवेष अलग है और अवकाष प्राप्त व्यक्तियों के अनुभव भी भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ व्यक्ति सेवानिवृत्त जीवन

से खुष होते हैं और कुछ खुष नहीं होते या संतुश्ट नहीं होते हैं। यह संतुश्टि उनके व्यक्तिगत अनुभवों पर निर्भर होती है और अनुभव व्यक्ति की समायोजन की क्षमता पर निर्भर करते हैं।

सेवानिवृत्ति को निर्धारित करने वाले कारक :

सेवानिवृत्ति; सामान्यतः दो आधारों पर सेवा षर्तों की परिनियमावली के अनुसार (ऐच्छिक तथा अनिवार्य) सुनिष्चित की जाती है। सेवारतों के लिए सेवानिवृत्ति एक अनिवार्यता है; एवं एक प्रक्रिया भी है जिसका महत्वपूर्ण कारक आयु ;।हमद्ध है। (रिटायरमेन्टः ए नैसेसिटी; क्रोटिड फ्रेड, 1969:13) जो एक समस्या के रूप में उभर कर सामने आती है।

सामाजिक संगठन एवं वर्ण व्यवस्था में वृद्धजनों की प्रस्थिति :

यह सत्य है कि समाज में पहले बुजुर्गों को जो मान सम्मान, आदर और दर्जा हासिल था; अब धीरे–धीरे लगभग समाप्त हो चला है। एकल परिवार की बढ़ती प्राथमिकता से पारिवारिक दायरे में बुजुर्ग धीरे–धीरे उपेक्षित होते जा रहे हैं। उनकी सुख–सुविधाओं का ख्याल तो दूर; परिजनों को वे भार सरीखे लगने लगे हैं। बुजुर्गों के प्रति यह उपेक्षात्मक रबैया क्या परिवार और समाज के लए उचित है? बुजुर्गों की उपेक्षा से उपजी यह त्रासदी क्या उचित है? आखिर यह अवस्था सभी को आनी है।..... उगते सूर्य की पूजा और डूबते सूरज की उपेक्षा की परम्परा के चलते विस्तार लेती इस समस्या हेतु दुनियॉ में छाए इस संकट के लिए जिम्मेदार कौन है?– स्वयं सेवानिवृत्त वृद्ध, बुजुर्ग, परिजन, समाज, सरकार, पष्चिमी संस्कृति का प्रभाव, आधुनिकता या बदलती परिस्थितियॉ? इसी सोच को लेकर कि वास्तविक स्थिति क्या है?, यही जानने की जिज्ञासा इस प्रस्तावित षोध का मौलिक उद्देष्य है।

भारतीय समाज के परम्परागत आधार विषेशकर वर्ण व्यवस्था में वृद्धजनों की स्थिति आज के परिवर्ती परिवेष की तुलना में अत्यन्त बेहतर थी परिवार, समुदाय तथा समाज द्वारा उनको आदर व सम्मान देने के साथ–साथ समय पर उनके अनुभवों का उचित लाभ भी लिया जाता था; जिससे वे सन्तुश्ट व खुष होते थे लेकिन आज नई पीढ़ी के लोग न उन्हें सम्मान व आदर ही देते हैं, और न उनके जीवन के अनुभवों का ही लाभ उठाते हैं; यहॉ तक कि उनकी दैनिक व्यवहार में उपेक्षा तक की जाती है जिसकी परिणिति यह हुई है कि वृद्धजन/सेवानिवृत्त व्यक्ति सुख षान्ति के लिए वृद्धाश्रमों की षरण में जाने लगे हैं जिसके लिए भारतीय परम्परा को नश्ट करने वाले मूल्य; परिवर्तनषील प्रक्रिया में सक्रिय भूमिकाएं निर्वाह कर रहे हैं। इस विकसित नयी संस्कृति से सेवानिवृत्त व्यक्तियों में निराषा, कुण्ठा

तथा उपेक्षा के भाव आना स्वीकार किया है (जैन सुरभि; सेवानिवृत्तिः एक मनोसामाजिक समस्या, प्रकाषित षोध पत्र, 'सामाजिक सहयोग' श्रीकृश्ण षोध संस्थान, राश्ट्रीय षोध पत्रिका, उज्जैन, म0प्र0, 2007, पृश्ठ 17–23)[24]

कुछ समय पहले तक सेवानिवृत्ति का सामना अपेक्षाकृत थोड़े व्यक्तियों को ही करना पड़ता था लेकिन अब जबकि सेवानिवृत्ति की नीति व्यापक रूप से अपनाई जा रही है और अधिकाधिक स्त्री पुरूश पहले की अपेक्षा अधिक जीवित रहना चाहते हैं तो ऐसी परिस्थिति में 'सेवानिवृत्ति' आधुनिक संस्कृति की बजह से बड़ी सामाजिक समस्याओं में से एक होती जा रही है। सेवानिवृत्ति की समस्याओं का सबसे अधिक सामना सेवानिवृत्त विषेशकर महिला व्यक्तियों को करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें सदैव सामाजिक नियमों व घरेलू अनुषासन के अनुसार कार्य करने की आदत पड़ी होती है। इसलिए सेवानिवृत्ति के बाद भी वे उसी प्रकार का जीवन जीना चाहती हैं, जिससे पारिवारिक व सामाजिक जीवन में वे अपने आपको समायोजित कम या फिर नहीं कर पाती हैं। सेवानिवृत्त महिलाएं घर में सदैव वही अनुषासन कायम रखना चाहती हैं जैसा कि अपने सेवाकाल के दौरान वे रखती थीं। महिलाओं में अन्य की अपेक्षा अधिक कार्य करने व व्यस्त रहने की आदती षक्ति होती है। साथ ही वे अधिक स्फूर्तिवान और सजग भी होती हैं। इसलिए उनके सामने कार्यविहीनता की स्थिति कम ही उत्पन्न होती है, क्योंकि सेवानिवृत्त होने के बाद वे कोई न कोई कार्य करना चाहती हैं। परन्तु कुछ सेवानिवृत्त के जीवन का उद्देष्य सेवायोजन से अलग होने के कारण किसी जीविकोपार्जन सम्बन्धी कार्य में नहीं जुड़ पाती हैं सेवानिवृत्त होने के पष्चात् एक अलग परिवेष में जीवनयापन करने के कारण सेवानिवृत्त महिलाओं को सामान्य जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जो एक सहज परिकल्पना भी है। परन्तु सेवानिवृत्ति; सेवारतों के लिए एक मानवीय समस्या है एवं अनिवार्यता भी।

<u>सेवानिवृत्ति/वृद्धावस्थाः जनसंख्यात्मक दषक वृद्धि सन्दर्भ एवं आँकड़े</u> :

'सेवानिवृत्ति' एक व्यक्ति के जीवन की वह दषा है जिसमें वह अपने संचयित गुण–दोषों की विवेचना करने का अवसर प्राप्त करता है। ये विवेचना करने की क्षमता उसे धार्मिक व्यवस्था के आलोक में प्राप्त होती है। एक तरफ जहॉ पर पूर्व सेवानिवृत्ति उसे उत्तर औद्योगिक समाज के विषेषताओं से अभिभूत कराता है वहीं दूसरी तरफ सेवानिवृत्ति सामान्य रूप से भारतीय कृषक एवं उत्तर कृषक समाज के मूलभूत अभिलक्षणों से भी सरोकार कराता है। विकास की प्रक्रिया पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो सेवा तथा सेवानिवृत्ति का समय

कदाचित अधोमुखी आर्थिक गतिषीलता को भी दर्षाता है। इस समाज के समग्र में बाल्यावस्था, युवावस्था व वृद्धावस्था प्रमुख सोपान हैं जिसमें सबका महत्व, प्रत्येक दूसरे के बराबर है। बाल्यावस्था जीवन की सकारात्मक शुरूआत है तो युवावस्था रचनात्मक पृष्ठभूमि एवं वृद्धावस्था जीवन पर दृष्टि डाली जाने वाली काव्यात्मक शैली है। ये तीनों ही गुणात्मकताऐं जीवन को अर्थपूर्ण, तर्कपूर्ण एवं विषिष्ट बनाती हैं। सामाजिक प्रत्याषाओं को पूरा करने के लिये व्यक्ति युवावस्था में अर्थोपार्जन के साधनों की संभावनाओं की तलाष करता है एवं राष्ट्रीय सामाजिक धारा को सबल करते हुये सेवानिवृत्त हो जाता है। सेवानिवृत्त होकर अन्य सामाजिक सेवाओं में भागीदार बनने का प्रयास करता है किन्तु सम–सामयिक घरेलू अड़चनें उसके जीवन के अविरल प्रवाह को मंदित करते हुये पीछे नहीं हटती। ''सास भी कभी बहू थी, न आना इस देष लाड़ो, बालिका वधू'' जैसे टी.वी. सिरियलों ने इन पीढ़ीगत संघर्षों को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यमों से उजागर किया है।

इस प्रकार सेवानिवृत्ति के पष्चात् व्यक्तियों को नाना प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ता है। इस पहलू पर समुचित रचनाओं (पुस्तकों/ग्रन्थों) का भी सर्वथा अभाव पाया गया है। सामाजिक परिस्थिति में पहले की तुलना में अभाव, सामाजिक अन्तःक्रिया में अंतर्सम्बन्धों का वस्तुकरण, उपयोगितावादी दर्षन का जीवन क्षेत्र में प्रभुत्व आदि सेवानिवृत्ति के बाद के जीवन के सामान्य अभिलक्षण हैं। ऐसे में सेवानिवृत्त व्यक्ति नाना प्रकार के भावनात्मक अवसादों से होकर गुजरता है। पहले से प्राप्त होने वाली सामाजिक आत्मीयता की आयुवृद्धि एवं भूमण्डलीयकृत संस्कृति के दबाव से जीवन का महत्व सेवानिवृत्ति के पष्चात् घट जाता है या हासिये पर चला जाता है। सेवानिवृत्ति, समाजषास्त्रीय शब्दकोष के अनुप्रयोगों में हासिये पर रहा है। ऐसा इसलिये भी है क्योंकि उपरोक्त विषय पर साहित्य का अभाव तो है ही, साथ ही साथ इस दिषा में समाजषास्त्रीय रूचि भी कम रही है। यदि सेवानिवृत्ति पर एक दृष्टि डाली जाय तो हम पाते हैं कि सेवारत मनुष्यों के जीवन में सेवानिवृत्ति एक ऐसी घटना होती है जिसमें वह पिछले अनुभवों की तुलना में अपने आप को अधिक अकेला समझने लग जाता है। आर्थिक दषा में विषेष रूप से परिणाम प्रतिकूल हो जाते हैं, क्योंकि पहले की अपेक्षा सेवानिवृत्ति कर्मचारी की आय करीब–करीब समाप्त सी हो जाती है पेंषनधारियों को मुख्य रूप से प्रतिमाह मिलने वाली सेवानिवृत्ति की राषि पर निर्भर रहना पड़ता है तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर हो जाने के कारण उन्हें अनेकों प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके कारण

भी वह हीनता की भावना से ग्रसित हो जाता है जो उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन की अभिवृत्तियों से प्रलक्षित होती है, परन्तु जो लोग अपने कामकाजी जीवन में सरकारी नौकरी के साथ अपना स्वयं का कोई पूरक/सहायक धन्धा चुन लेते हैं वे उन लोगों की तुलना में अधिक सफल और स्वस्थ होते हैं जो सेवानिवृत्ति के पहले या बाद में किसी प्रकार कार्य नहीं करते।

महिलाओं के सन्दर्भ में सेवानिवृत्ति के प्रभाव का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जहॉ नारियों की स्थिति सॉख्यिकीय आंकलन पर उत्तरोत्तर हॉसिये पर जाती नजर आती है, वहीं महिलाओं को सबसे पहले सामाजिक गतिकी के अवरोधात्मक पहलुओं का सामना भी करना पड़ता है। कामकाजी प्रवृत्ति व घरेलू प्रत्याषाओं के विभिन्न सोपानों में महिलाओं की स्थिति पहले से ही सामाजिक साम्यावस्था के संघर्षात्मक प्रारूपों पर अटकलें लगाता चलता है जो सेवानिवृत्ति के पष्चात् दृढ़ होता परिलक्षित होता है। सम्प्रति में साधारणतः 60 वर्ष के बाद कर्मचारी सेवानिवृत्ति हो जाता है, ऐसे में वह एक विषिष्ट उपवर्ग का अंग बन जाता है। भारतीय समाज में सेवानिवृत्ति कर्मचारियों को परिवार में विषेषकर पुत्रों उनकी पत्नियों एवं पोते–पोतियों के साथ–साथ अपने मित्रों के साथ सामंजस्य करना पड़ता है, जिसके लिये व्यक्ति को पिछले की तुलना में अपने व्यक्तित्व में संरचनात्मक परिवर्तन लाना पड़ता है। ये संरचनात्मक परिवर्तन कई बार सतत् चल रहे प्रकार्यों के लिये भ्रामक भी सिद्ध होते हैं। सामान्यतः सेवानिवृत्ति के पष्चात् सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित समस्याऐं पनपती हैं। यदि इस सन्दर्भ में सम्प्रति के चिन्तकों पर एक दृष्टि डाली जाये तो निम्नलिखित तथ्य सुस्पष्ट होते हैं जो 'साहित्य का अध्ययन' एकक में दृष्टिगत हैं।

मेयर[25] (1957) ने कहा है कि ''कार्यनिवृत्ति या जिम्मेदारियों के घटने से जो अधिक अवकाष मिलता है वह प्रायः उबाने वाला होता है और व्यक्ति का अभिप्रेरण **;डवजपअंजपवदद्ध** घटा देता है।'' व्यक्ति के जीवन में कठिन मोड़ 58–60 वर्ष की उम्र के पास आते हैं। इस उम्र में आकर उसे उन कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके बारे में व्यक्ति ने कभी सोचा भी नहीं होता था। **जे0ए0एम0 मीरलू[26] (1955:72–82) के अनुसार** ''वृद्धावस्था को जीवन के सुख का काल होना चाहिये। इस काल में व्यक्ति को अपने परिश्रम के फलों के उपयोग के लिये सदैव अवकाष और आराम मिलना चाहिये। व्यक्ति को अपनी आकुलताओं से मुक्त हो जाना चाहिये और उसके ऊपर काम का बंधन नहीं लगाना चाहिये। यह वह समय होता है जब व्यक्ति अपनी उपलब्धियों के कारण प्राप्त प्रतिष्ठा तथा अपनों की

निष्ठा और भक्ति से शांति और संतोष का अनुभव करता है। हमारे समाज में थोड़े ही वृद्ध ऐसे होते हैं जो अपने जीवन के अन्तिम समय में सुख और संतोष का अनुभव करते हैं। वस्तुतः अधिकतर लोगों के लिये वृद्ध होना एक दुःखद अनुभव होता है'' अधिकांष व्यक्ति यह सोचते हैं कि जीवन को मनचाहे ढंग से जीने का अवसर प्राप्त होगा, परन्तु अक्सर सम्भव नहीं हो पाता है। इस समय व्यक्ति में वरिष्ठ होने, आत्म–सम्मान एवं अहंकार आदि की भावनाऐं आ जाती हैं। जिससे व्यक्ति को सामाजिक पारिवारिक समायोजन करने में विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कुछ व्यक्ति अपनी मानसिकता व रूचि के अनुसार धार्मिक, आध्यात्मिक तथा रचनात्मक कार्यों में स्वयं को व्यस्त कर लेते हैं। इसलिये उन्हें व्यतीत करने की समस्या नहीं होती है। परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनकी रूचि इससे भिन्न परिवार में स्वयं को व्यस्त करने की नहीं होती है या कुछ अन्य रूचियाँ नहीं होती हैं। विषेष रूप से ऐसे व्यक्तियों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति के जीवन में बहुत से परिवर्तन आते हैं, ये परिवर्तन उनके जीवन निर्वाह के तौर तरीकों पर निर्भर होते हैं। जैसा कि **कार्लसन और स्टीगनिस[27] (1952:18–31)** ने लिखा है कि ''आयु वृद्धि का अलग–अलग लोगों पर अलग–अलग प्रभाव होता है और स्त्री पुरूषों में उसकी रफ्तार अलग–अलग होती है। साथ ही आनुवांषिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमियों में भिन्नता होने से भी वयोवृद्धि में भिन्नता आ जाती है।'' यह स्वयं व्यक्ति पर ही निर्भर करता है कि वह इस परिवर्तन के साथ सामंजस्य करता है या नहीं करता है यदि व्यक्ति के अन्दर समायोजन की क्षमता होती है तो इन परिस्थितियों का विषेष प्रभाव नहीं पड़ने देता व्यक्ति में समायोजना की क्षमता की कमी या अभाव पाया जाता है तो विषेषतः वह अनेक समस्याओं से ग्रसित हो जाता है। **रीमैन[28] (1954:379) ने लिखा है कि** ''अधिक आयु के लोग तीन वर्गों में आते हैं जिनमें से हर एक के विषिष्ट लक्षण होते हैं लेकिन इन सामान्य वर्गों के अन्दर भी कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें वर्ग के विषिष्ट लक्षण अन्य की अपेक्षा अधिक विकसित रूप से पाये जाते हैं आपकी मान्यता है कि ये तीन वर्ग होते हैं– स्वायत्त, समायोजित और परायत।'' स्वायत्तों का लक्षण यह है कि उनमें सृजनात्मक सक्रियता और आत्मस्फूर्ति होती है, जो शरीर को सजीव बनाये रखती है। वे सॉस्कृतिक परिवर्तनों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित रहते हैं और आयुवृद्धि से उनकी समझदारी बढ़ती है लेकिन स्फूर्ति नष्ट नहीं होती वे अनिवार्यतः संतुलित या समायोजित नहीं होते और संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। समायोजित वर्ग में वे लोग आते हैं

जो पर्यावरण के अनुकूल स्वयं को ढाल लेते हैं और कार्य करते रहते हैं। इन्हीं कार्यों के कारण वे स्फूर्तिवान बने रहते हैं। पर्यावरण उन्हें रक्षा का कवच प्रदान करता है और जब तक सॉस्कृतिक परिस्थिति अनुकूल होती है तभी तक वे अपने आपको बनाये रख सकते हैं। तीसरा वर्ग परायतों का है जो शारीरिक स्फूर्ति नष्ट होने पर तुरन्त नष्ट हो जाते हैं क्योंकि संस्कृति उन्हें सब सहारा नहीं देती है। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक **जे0डब्ल्यू0 स्टील[29] (1947:24) के अनुसार** ''षारीरिक और मानसिक क्षमता के अनुसार कार्य करने की असमर्थता, आनुवांषिकता की कमी के कारण नहीं बल्कि इस कारण है कि वे अगर चाहें तो जीवन में और अधिक कार्य कर सकते हैं।'' **एच0ई0क्लाऊ[30] (1960:592–599) के अनुसार** जिन व्यक्तियों की सेवानिवृत्ति के बाद उत्साह बनाये रखने वाली रूचियाँ नहीं होती हैं, उनके अस्तव्यस्त तथा असफल होने की सम्भावनाएं अधिक होती हैं फलतः वे शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से क्षींण हो जाते हैं और उनकी जल्दी ही मर जाने की सम्भावना रहती है। देखा गया है कि मानसिक रोगों से ग्रस्त वृद्धों में से अधिकांष में क्रिया–विकृतियाँ होती हैं जो मस्तिष्क विकारों के नहीं बल्कि मानसिक कारकों का प्रतिफलन होता है। व्यक्ति अतिरिक्त समय का प्रयोग जितनी बुद्धिमानी और सजगता से करता है उसी पर उसका सफल व सन्तुष्ट जीवन निर्भर होता है। **लावटन[31] (1964:34) के अनुसार** ''जीवन भर के तौर तरीके को छोड़ देने और जीवन भर की आदतों व व्यवहारगत षैली को एकाएक बदल देने के कारण बुजुर्ग व्यक्तियों को जो अनुभव होता है वो प्राणघातक भी सिद्ध हो सकता है। **पी0एल0 एस्सट[32] (1961:70) ने कहा है कि** यदि समायोजन को सफल बनाना है तो व्यक्ति को आयु वृद्धि के साथ–साथ आने वाले षारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों से अवष्य समायोजन कर लेना चाहिए एवं पारिवारिक परिस्थितियों से भी।

'व्यक्ति' वृद्धावस्था में किस प्रकार समायोजन करता है यह उसके पूर्व अनुभवों पर निर्भर है साथ ही साथ यदि परिवार और समाज का व्यक्ति के प्रति सहयोगी रूख है तो वह सफलतापूर्वक समायोजन कर पायेगा। वर्तमान समय के बदलते सामाजिक मूल्यों, आधुनिकता तथा अत्यधिक व्यस्त जीवन के कारण, तमाम वृद्ध अपनों के होते हुये भी स्वयं को अकेला, बेसहारा, असहाय और बेचारा महसूस करते हैं। वास्तव में जिस गति से आज वृद्ध नागरिकों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में उनकी समस्याऐं और भी जटिल होती जाएगी। वृद्धावस्था के सन्दर्भ में विष्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत में

निष्चित जन्म दर ;ब्ठथ्द्ध और निष्चित मृत्यु दर ;ब्क्त्द्ध के सन्दर्भ में 60 वर्ष जीनव सीमा वाले लोगों का आंकलन निम्न प्रकार किया है :–

जनांकिकी वर्श (दषक अन्तराल)	*जन्म दर ;ब्ठथ्द्ध*	*मृत्यु दर ;ब्क्त्द्ध*	*पुरूशों की 60 वर्श की जीवन सम्भावनाएं*	*महिलाओं में 60 वर्श की जीवन सम्भावनाएं*
1961	41.7	22.8	11.8	13.0
1971	41.2	19.0	13.6	13.8
1981	33.9	12.5	13.8	14.7
1991	29.7	10.7	14.5	15.5
2001	23.7	8.4	15.2	16.4

(स्रोत– विष्व स्वास्थ्य संगठन रिपोर्ट 2002)

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमानानुसार, वृद्धों की जीवन सीमा 60 वर्ष तक में 7.7 प्रतिषत (वर्ष 2000) है जोकि 2025 में 12.6 प्रतिषत हो जायेगी। महिला–पुरूषों का 60 वर्ष से अधिक जीवन सीमा के लिए 1022:1000 का अनुपात आँका गया है जिसमें वृद्धावस्था जनित समस्याओं से महिलाओं को अधिक प्रभावित होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।

सन् 1960 की जनगणना के अनुसार भारत में वृद्ध नागरिकों की जनसंख्या 5.63 प्रतिषत थी जो कि सन् 1971 (एक दषक) में बढ़कर 5.97 प्रतिषत हो गयी। सन् 1981 में 6.28 प्रतिषत थी जो दो दषकों में बढ़कर सन् 1991 में 6.58 प्रतिषत हो गई है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार प्रादेषिक दृश्टि से वृद्धों की जनसंख्या सर्वाधिक केरल राज्य में थी। जबकि न्यूनतम जनसंख्या 3.55 प्रतिषत अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में पायी गई है। उत्तर प्रदेष में यह जनसंख्या 6.65 प्रतिषत थी जो सन् 2015 से 2020 के बीच काफी बढ़ जायेगी। यदि सन् 2011 की जनगणना पर एक दृष्टि वृद्धों के सम्दर्भ में डाली जाये तो ग्रामीण तथा नगरीय वर्गीकरण के अनुसार निम्नलिखित तथ्य प्रकाष में आते हैं :–

क्रम	*जनांकिकीय वर्गीकरण*	*ग्रामीण*	*षहरी*
1	60 वर्श से अधिक लोग (लाखों में)	494.51	107.35
2	लिंगानुपात (1000 पु0/महिला)	675	697
3	आर्थिक रूप से स्वतंत्र	34.02	28.94
4	सामान्यतः रोजगार में	40.55	26.76
5	अकेला वास	7.99	5.94
6	सेवा निवृत्त व अकेला वास	2.03	3.11
7	वृद्धावास में जाने की इच्छा रखने वाले	19.10	17.60
8	षारीरिक रूप से षिथिल	45.00	44.80
9	पूर्णकालिक व्यधि से पीड़ित	5.40	5.50

(स्रोत– सिचुयेषन एनालिसीस ऑफ इल्डरली पीपुल इन इण्डिया 2011, सांख्यकीय एवं कार्यान्वयन योजना मंत्रालय, भारत सरकार)

यद्यपि अवकाष प्राप्ति की अवस्था की उम्र निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वान एकमत भी नहीं है कोई विद्वान इस अवस्था को 55+ वर्ष से मानता है, तो कुछ विद्वान 60+ आयु वर्ग से, तो कुछ रोजगार विरत को इससे जोड़ते हैं। निम्न तालिका भारत में इस अवस्था के व्यक्तियों के सन्दर्भ में लिंग सापेक्ष संख्या (प्रतिषत) तथा दषक वृद्धि भारत में वृद्धजनों की संख्या, जनसंख्या के साथ प्रतिषत तथा होने वाली दषक वृद्धि पर संक्षिप्त प्रकाष डालती है। (संख्या करोड़ों में) जनसंख्या 2011[33] के अनुरूप तथ्यः

वर्श	*जनसंख्या का प्रतिषत*	*पुरूश प्रतिषत*	*महिला प्रतिषत*
1951	5.43	—	—
1961	5.63	5.21	5.66
1971	5.97	5.46	5.80
1981	6.42	5.94	5.99
1991	6.55	6.45	6.66
2001	7.70	7.55	7.86
2011	8.12	8.08	8.16

स्रोतः शर्मा, एस.पी. और पेटर जेनोस (2011) 'एजिंग इन इण्डियाः डेमोग्राफिक बैकग्राउण्ड एण्ड एनालिसीस बेस्ड ऑन सेन्सस मैटेरियल' ओकेसनल पेपर नं. 02 आफ 2011, आफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल एण्ड सेंसस कमिष्नर, इण्डिया, नई दिल्ली 2010 (4)

यद्यपि सेवानिवृतों की संख्या लैंगिक परिदृष्य में 1022:1000 है, फिर भी महिला सेवानिवृत्तकों को एकाकीपन, अवसाद, सामाजिक असुरक्षा, आर्थिक विपन्नता एवं षारीरिक व स्वास्थ्य जनित अनेकों प्रकार की विभिन्न समस्याओं से जूझना पड़ता है। यह अध्ययन इसलिये भी महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि भारतीय समाज में पुरूशों की अपेक्षा महिलाओं को अधिक जिम्मेदार समझा गया है जिसका प्रारूप सेवानिवृत्ति महिलाओं के सन्दर्भ में अनन्य महत्व का है।

विदित है कि इस समस्या पर भारतीय सन्दर्भ में सम्यक समाजषास्त्रीय चिन्तन का नितान्त अभाव है। अतः इस सन्दर्भ में समाजषास्त्रीय चिन्तन हेतु **''सेवानितृत्ति महिलाओं की स्थिति मथुरा जनपद के विषेष सन्दर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन''** रखा गया है। इस शोध के माध्यम से महिलाओं के विषेश प्रसंग में सेवानिवृत्ति के विभिन्न समाजषास्त्रीय आयामों को पारिवारिक तथा सामाजिक परिक्षेत्र में रखकर देखा जाएगा। इसमें सेवानिवृत्ति

महिलाओं का समाजषास्त्रीय अध्ययन मथुरा के सन्दर्भ में प्रस्तावित है जिस पर षोधार्थिनी के संज्ञान में अभी तक कोई षोध कार्य सम्पादित नहीं हुआ है।

KKKKKK

सन्दर्भ–सूची

1. मेयर एच.डी.: (1957) द एडल्ट साइकिल, अमेरिकन एकाडेमी, पृश्ठ–58

2. मीरलू जे.ए.एम. : (1955) ट्रान्सफरेन्सी एण्ड रेसिस्टेंस इन टोरिएटिक फिजियोथेरेपी साइकोनल रिब्यु, पृ. 72–82

3. काहन जैक एण्ड राइट सूसनः (1980) ह्यूमैन ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट आफ पर्सनेलिटी,पैरगेमन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, एडिसन थर्ड, पृ. 10

4. हैविंग हर्स्ट आर.जे. एण्ड शैनस ई.: (1953) रिटायरमेंट एण्ड प्रोफेषनल वर्कर्स, जे. गैरोट, पृ. 81–85

5. डोनाऊ ओरबैक एण्ड अदर्स : (1995) द इमर्जिंग सोषल पैटर्न इन तिब्बत, हैण्ड बुक ऑफ सोषल वर्क, पृश्ठ 330–331

6. थॉमस एस.जे. एण्ड ब्रिडले बी.जे. ; (1960) रोल एण्ड थ्योरी, जॉन विली एण्ड सन्स, पृ. 29

7. लिण्टन वेट्स ; (1960) प्रॉब्लम्स ऑफ रिटायरमेण्ट एण्ड रोल एडजस्टमेण्ट; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 103

8. न्यूकॉम्ब वेट्स ; (1960) रोल परसेप्सन, द मैक मिलन कम्पनी, न्यूयार्क, पृश्ठ 130

9. गेट्स विलियम ; (1948) एजुकेषनल साइकोलॉजी, द मैक मिलन कम्पनी न्यूयार्क, पृ. 614

10. इंग्लिष एच.बी. एण्ड अदर्स : (1958) ए कम्पेरेटिव डिक्षनरी ऑफ साइ– कोलॉजी एण्ड साइकोऐनेलेटिक टर्म्स, पृश्ठ 13

11. शेफर एल.एफ. एण्ड शोबेन : (1956) द साइकोलॉजी ऑफ एडजस्टमेंट, बोस्टन मिफिन कम्पनी, पृश्ठ 3

12. कार्लसन ई.जे. ; (1952) फिजियोलाजिकल चेन्ज इन एजिंग, अमेरिकन एकाडेमी, षिकागो, पृश्ठ 18–31

13. रीनमैन डी. ; (1954) सम क्लीनिकल एण्ड कल्चरल आसपैक्ट्स ऑफ एजिंग, अमेरिकलन जर्नल ऑफ सोषियोलॉजी, पृ. 379

14. क्लाऊ ई.एच. ; (1960) साइकियाट्रिक फैक्टर्स इन रिहैवीलि– टेषन आफ द एजिंग, मेन्ट हाई पब्लिषर्स, न्यूयार्क, पृश्ठ 592

15. लावटन जॉर्ज ; (1964) ऐजिंग सक्सेसफुली, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, पृश्ठ 37

16. ऐस्सर्ट पी.एल. ; (1961) प्रीपरेषन फॉर ए कंस्ट्रक्टिव ऐप्रोच टू लेटर मेन्टिलिटी, पूर्वोक्त, पृश्ठ 70

17. वेस्ट डब्ल्यू.ई. ; (1954) रिटायरमेन्ट ए नैसेसिटी, गैरियोट्रिक्स जर्नल, पृश्ठ 80–82

18. गोल्ड फर्ब ए.आई. ; (1969) साइकोथैरेपी विद एज्ड परसन्सः पैटर्न ऑफ ऐडजस्टमेन्ट इन ए होम फॉर दि ऐज्ड मेट, जर्नल ऑफ साइक्लॉजी, पृश्ठ 8–21

19. कूटनर बर्नार्ड ; (1996) रिटायरमेन्ट्स ओवर सिक्सटी एण्ड सिक्सटी फाइव; देयर प्रॉबलम्स एण्ड रिमेडी, रसलसेज पब्लिषर्स, पृ.102

20. माइक्लोन एल.सी. ; (1959) न्यू लैजर क्लास, जर्नल ऑफ सोषियोलॉजी, पृश्ठ 371–78

21. फायर्ड एडिडा ; (1970) ग्रुप्सः टूवार्ड्स ऐक्टिविटी एण्ड इनेक्टिविटी, पूर्वोक्त, पृ. 141–151

22. क्रोटेड फ्रेड ए. ; (1969) वूमेन इन रिटायरमेन्टः ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट; ऑक्सफोर्ड औचियो, स्क्रिपर्स फाउन्डेषन फॉर रिसर्च इन पॉपुलेषन प्रॉब्लम,पृ.107

23. आइन्टिजिन फ्रैन्क ; (1970) सोसल रिलेसन्स आफ्टर रिटायर– मेन्ट्स, यू.एस. ए., पृश्ठांकन 146

24. जैन सुरभि ; (2007) सेवानिवृत्तिः एक मनो सामाजिक समस्या, प्रकाषित षोध पत्र, राश्ट्रीय षोध पत्रिका 'सामाजिक सहयोग' उज्जैन (म.प्र.) अंक सितम्बर–अक्टूबर पृश्ठ 17–23

25. मेयर एच.डी ; (1975) द ऐडल्ड साइकिल, अमेरिकन एकाडेमी, पृश्ठ 58–67

26. मीरलू जे.ए.एम ; (1956) ट्रान्सफेरेन्स एण्ड रेसिस्टेन्स इन टोरिटिक फिजियो थैरेपी साइमलोन रिव्यु, पृश्ठ 72–82

27. कार्लसन ई.जी ; एण्ड स्टीगनिस (1952) फिजिओलॉजिकल चेंज इन एजिंग, अमेरिकन एकाडेमी, पृश्ठ 18–31

28. रीमैन डी. ; (1954) सम क्लिनिकल एण्ड कल्चरल आसपैक्ट्स इन एजिंग, अमेरिकन जर्नल ऑफ सोषियोलॉजी, पृ. 379

29. स्टील जे. डब्ल्यू ; (1947) मैन्स पोटेन्षियल एण्ड हिज परफॉर्मेन्स, द न्यूयार्क टाइम्स, 24 नवम्बर, 1947

30. क्लाऊ एच.ई ; (1960) साइकियाट्रीक फैक्ट्र्स इन रिहैविलि– टेषन ऑफ द एजिंग, मेन्ट हाई न्यूयार्क, पृश्ठ 592–599

31. लावटन जी. ; (1964) ऐजिंग सक्सेसफुल, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृश्ठ 37

32. एस्सट पी.एल ; (1961) प्रिपेरषन फॉर ए कन्स्ट्रक्टिव एप्रोच टू लेटर मैच्योरिटी, टैक्नो काल (प्रा0लि0) न्यूयार्क, पृश्ठ 70–76

33. ..... ; (2002) विष्व स्वास्थ्य संगठन रिपोर्ट–2002

34. ..... ; (2011) सिचुएषन एनालाइसिस ऑफ एल्डरली पीपुल इन इण्डिया–2011; सॉख्यकीय एवं कार्यान्वयन मंत्रालय (योजना विभाग), भारत सरकार।

35. षर्मा एस.पी ; एण्ड पीटर जेनोस (2011) एजिंग इन इण्डिया, डैमोग्राफिक बैक ग्राउन्ड एण्ड ऐनालाइसिस बेस्ड ऑन सेन्सस मैटिरियल, ऑकेजनल पेपर (2), 2011, ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल एण्ड सेन्सस कमिष्नर, इण्डिया, नई दिल्ली 2012(4)

KKKKKK